इकाई 7 सूफी मत और जायसी का पदमावत

इकाई की रूपरेखा

7.0 उद्देश्य
7.1 प्रस्तावना
7.2 सूफीमत
7.3 जायसी और सूफीमत
7.4 कवि जायसी और उनका पदमावत
7.5 सारांश
7.6 शब्दावली
7.7 अभ्यास/प्रश्न

7.0 उद्देश्य

इस खंड की इकाई 5 और 6 में आपने कबीर के साहित्य के विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त की। यह इकाई जायसी पर केन्द्रित है। इसे पढ़कर आप :

- सूफीमत से परिचित हो सकेंगे,
- सूफीमत और मलिक मुहम्मद जायसी का क्या संबंध है, इसकी जानकारी प्राप्त कर सकेंगे,
- सूफीमत में प्रेम के स्वरूप और प्रेम-संबंधी जायसी की अवधारणा को रेखांकित कर सकेंगे, और
- जायसी-कृत **पदमावत** में अभिव्यंजित प्रेम का अध्ययन कर सकेंगे।

7.1 प्रस्तावना

मलिक मुहम्मद जायसी को हिन्दी का सूफी कवि माना जाता है। इसलिए जायसी के कवि-रूप का अध्ययन करने से पूर्व आपके लिए यह जान लेना आवश्यक होगा कि "सूफी" किसे कहते हैं? हिन्दी में "सूफीमत" नाम से प्रचलित अवधारणा के लिए अंग्रेजी में सूफिज्म और उर्दू में तसव्वुफ (मूलत: अरबी शब्द) का व्यवहार होता है। यह एक दार्शनिक अवधारणा है, जो फारसी काव्य से चलकर हिन्दी काव्य तक आयी। हिन्दी के जिन कवियों में इस अवधारणा के दर्शन होते हैं, वे सूफी कवि कहलाए। जैसे : मुल्ला दाऊद, मलिक मुहम्मद जायसी, कुतुबन, मंझन, कासिमशाह, नूर मुहम्मद आदि। जायसी का नाम उनमें अग्रगण्य है।

मलिक मुहम्मद जायसी को केवल कवि कहा जाय, या सूफी कवि - इसको लेकर पर्याप्त विचार-विमर्श हो चुका है। यहाँ हम उन्हीं तमाम विचारों के प्रकाश में जायसी की कविता का मूल्यांकन प्रस्तुत करेंगे।

इश्क अर्थात् प्रेम - सूफीमत का एक प्रमुख अंग है और जायसी मूलत: प्रेमाख्यान के कवि हैं, अत: सूफीमत और जायसी दोनों की प्रेमसंबंधी परिकल्पनाओं का भी अध्ययन करना समीचीन प्रतीत होता है।

चूँकि **पदमावत** जायसी की अमर रचना है, इसलिए उक्त ग्रंथ में प्रतिपादित प्रेम के स्वरूप का सम्यक् विवेचन इस इकाई का मूल अभीष्ट है।

7.2 सूफीमत

जैसा कि पहले बताया जा चुका है, मलिक मुहम्मद जायसी को सूफी कवि कहा जाता है, इसलिए "सूफी" अथवा "सूफीमत" का अध्ययन आवश्यक प्रतीत होता है।

''सूफी'' शब्द की व्युत्पत्ति के संबंध में अनेक तरह के विचार व्यक्त किये गये हैं। सुफ्फा, सफ, सोफिया, सूफ आदि शब्दों को इसका मूल माना जाता रहा है। अंतत: "सूफ'' शब्द पर बहुमत हुआ, जिसका अर्थ है ''ऊन''। अर्थात् ''सूफी'' वह है, जो ऊनी वस्त्र धारण करता हो। लेकिन शाब्दिक अर्थ जान लेने मात्र से सूफीमत का पूर्ण बोध नहीं हो जाता।

सूफीमत अथवा तसव्वुफ इस्लाम का एक अंग है, किन्तु फकीह अथवा धर्मशास्त्री इसे इस्लाम से अलग मानते रहे, क्योंकि प्रारंभिक सूफियों ने इस्लाम की प्रवृत्तिमूलक भावना के विपरीत उसमें भक्ति का समावेश किया और आत्मा के शुद्धिकरण पर जोर दिया। ध्यान देने योग्य बात यह है कि प्रारंभ के सूफीमत में दर्शन का अभाव था; अलहसन, इब्राहीम बिन अधम और अयाज के विचारों से सूफीमत अपना आधार ग्रहण करने लगा और उसका प्रारंभिक स्वरूप राबिया के विचारों में दिखायी दिया। सर्वप्रथम राबिया बसरी में प्रेम का उदात्त रूप दिखायी पड़ा फिर भी वह तवक्कुल (आत्मसमर्पण) के भाव को बनाये रखना अपना कर्तव्य समझती थी। वह खुदा के प्रेम में इस तरह तदाकार हो गई थी कि शेष सृष्टि के प्रति न तो उसे प्रेम रहा और न घृणा।

इस तरह आपने देखा कि प्रारंभिक सूफियों ने इस्लाम की शरीयत के विपरीत इस्लाम में भक्ति और माधुर्य का समावेश कर एक नये दर्शन की आधारशिला रखी। धीरे-धीरे सूफीमत पर ईसाईयत, नवअफलातूनी मत, भारतीय वेदान्त और बौद्धदर्शन का प्रभाव पड़ने लगा। लेकिन इस सूफीमत में एक नया मोड़ उस समय आया जब जुनद शिबली और मंसूर हल्लाज ने गैर इस्लामी विचारों को व्यक्त करना शुरु किया। मंसूर हल्लाज ने ''अनलहक'' (अन-अल्-हक़ = मैं ही सत्य हूँ) कहकर इस्लाम के धर्मशास्त्रियों को क्रुद्ध कर दिया। चूँकि इस्लाम में यह मान्यता है कि अल्लाह एक है और उससे न कोई पैदा हुआ और न वह किसी से पैदा हुआ तथा उसकी समता का भी कोई नहीं है, इसलिए मंसूर हल्लाज को अपने को सत्य कहना उलेमाओं को अच्छा नहीं लगा। इसीलिए मंसूर का कत्ल कर दिया गया। दरअसल मंसूर का यह कथन वेदान्त का अहं ब्रह्मास्मि ही है जिससे यह सिद्ध होता है कि मंसूर के समय तक सूफी मत पर अनेक दर्शनों का प्रभाव पड़ने लगा था।

मंसूर के कत्ल के बाद सूफीमत को जबर्दस्त आघात लगा और सूफियों को एक सुसम्बद्ध दर्शन की आवश्यकता महसूस हुई। अत: सूफीमत ने इस्लाम से समझौता भी शुरु कर दिया। अल ग़ज़ाली ऐसे ही समन्वयवादी सूफी दार्शनिक थे। अल ग़ज़ाली, जिस पर यूनानी दार्शनिकों के साथ-साथ क़ुरान और हसनअलबसरी, राबिया और जुनैद के मतों का प्रभाव था, उनके समन्वयवादी विचारों से इस्लाम और सूफीमत का विरोध समाप्त हो गया। इस प्रकार सूफी दर्शन दो धाराओं में बँट गया। पहली धारा मंसूर हल्लाज के अनुयायियों की है और दूसरी समझौतावादी दार्शनिकों की। पहली धारा के दार्शनिकों की दृष्टि उदार है और दूसरी धारा के दार्शनिकों की कुरानसम्मत, जो कुरान के प्रतिकूल नहीं जाते।

अभी तक आपने देखा कि सूफीमत ने किन परिस्थितियों में अपनी अस्तित्व-रक्षा के लिए एक पुष्ट दर्शन का विकास किया और वह दो धाराओं में बँट गया। इस समय तक सूफीमत पर वेदांत का प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होने लगा था। साक्ष्य के लिए इब्नुल अरबी के विचारों को भी देखा जा सकता है जो एकेश्वरवादी दृष्टिकोण कि ''ईश्वर केवल एक है'' की जगह कहता है कि "केवल ईश्वर है और कुछ नहीं''। इब्नुल अरबी का यह दृष्टिकोण वेदान्त के '' सर्वं खलु इदं ब्रह्म'' के समीप है। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि इब्नुल अरबी के ये विचार भारत में काफी लोकप्रिय हुए। हिन्दी के सूफी कवि मंझन ने उन्हीं विचारों को ध्यान में रखकर **मधुमालती** की रचना की।

अब आपको सूफीमत की साधना-पद्धतियों को जान लेना ज़रूरी है क्योंकि समूचा सूफी दर्शन इन्हीं साधना-पद्धतियों पर निर्भर है। जिस तरह योग के आठ अंग होते हैं और योगी उनका क्रमशः आचरण करते हुए समाधि की दशा में पहुँचता है उसी प्रकार सूफी परमात्मा के प्रेम में डूबकर उसमें लीन हो जाता है। इस अवस्था में वह ईश्वर से तदाकार हो जाता है। सूफी दर्शन की भाषा में इसे बक़ा कहा जाता है।

सूफीमत में साधना के चार सोपान माने गये हैं - शरीअत, तरीकत, मारिफत और हक़ीकत। दूसरे शब्दों में इन्हें नासूत, मलकूत, जबरूत और लाहूत भी कहा जाता है। कुछ लोगों ने एक और सोपान हाहूत की भी कल्पना की जिसे सत्यलोक भी कहा जा सकता है। हर सूफी तौबा, जहद, सब्र, शुक्र, रिज़ाअ, ख़ौफ़, तवक्कुल, रज़ा, फ़िक्र और मोहब्बत को आचरण में लाते हुए अपने माशूक अर्थात् ब्रह्म में लीन

हो जाता है। साधना के इन सोपानों से गुज़रते हुए वह काम, क्रोध, मोह, लोभ आदि चित्तवृत्तियों और मनोविकारों से मुक्त हो जाता है। यह फना की अवस्था होती है। प्रियतम के सिवाय उसे कुछ भी नज़र नहीं आता। वस्ल यानी मिलन के बाद आशिक और माशूक अर्थात् जीवात्मा और परमात्मा में कोई फर्क नहीं रहता। वह ब्रह्ममय हो जाता है। इसे ही बक़ा कहा जाता है।

सूफीमत में अद्वैत दर्शन की शुरुआत बायज़ीद ने की। बायज़ीद जीवात्मा और परमात्मा में कोई फर्क नहीं मानते थे। करखी और बायज़ीद के बाद ही सूफियों में "प्रेमपियाला" का प्रचलन हुआ।

सूफी मत की दार्शनिक पृष्ठभूमि से परिचित होने के बाद उसके विभिन्न सम्प्रदायों की जानकारी अति आवश्यक है, क्योंकि सूफी कवियों का संबंध किसी एक सम्प्रदाय से न होकर विभिन्न सम्प्रदायों से रहा है।

विभिन्न सम्प्रदाय

सूफी सिद्धान्तों की रूपरेखा हुज्वेरी ने प्रस्तुत की। वे एक सूफी साधक और विचारक थे। अपनी किताब "कश्फुल-महजूब" में उन्होंने उस समय तक प्रचलित 12 सम्प्रदायों की जानकारी दी। दरअसल भारत में सूफीमत हुज्वेरी के साथ आया, लेकिन यहाँ पर सूफी मत का क्रमबद्ध इतिहास ख्वाजा मोइनुद्दीन चिश्ती के आने के बाद शुरू हुआ। उन्होंने चिश्तिया सम्प्रदाय की स्थापना की। ख्वाजा बख्तियार काकी इसी सम्प्रदाय के मशहूर सूफी सन्त थे। बाबा फरीद उन्हीं के शिष्य थे। बाबा फरीद के अनेक शिष्यों में ख्वाजा निजामुद्दीन औलिया भी थे।

भारत में सूफी मत के अनेक सम्प्रदाय बने जिनमें चिश्तिया सम्प्रदाय, सुहरवर्दिया, कादिरिया, नक्शबंदिया और मेहदवी सम्प्रदाय प्रमुख हैं।

चिश्तिया सम्प्रदाय की दो शाखाएँ हुईं। पहली, निजामुद्दीन औलिया की औलिया सम्प्रदाय और दूसरी साबिरी सम्प्रदाय। साबिरी सम्प्रदाय नामक नयी शाखा शेख अलाउल अली अहमद साबिर ने स्थापित की। अमीर खुसरो औलिया शाखा के थे और वे निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। सुहरवर्दिया सम्प्रदाय भी ख्याति प्राप्त था। यह सम्प्रदाय मशहूर संत शेख शहाबुद्दीन सुहरवर्दी के नाम पर कायम हुआ। इस सम्प्रदाय के दो विख्यात संत शेख हमीदुद्दीन नागौरी और शेख वहाउद्दीन जकारिया सुहरवर्दी के शिष्य थे जिन्हें उन्होंने भारत भेजा था। बाद में इस सम्प्रदाय की दो तीन शाखाएँ और बनीं। हिंदी के सूफी कवि कुतुबन सुहरवर्दिया सम्प्रदाय के थे।

कादिरिया और नक्शबंदिया सम्प्रदाय बहुत बाद के हैं। हिंदी के सूफी कवियों का संबंध इन सम्प्रदायों से नहीं है। मेहदवी सम्प्रदाय के संस्थापक मीर सैयद मुहम्मद जौनपुरी थे। उन्होंने स्वयं को मेहदी घोषित किया। शेख बुरहान इन्हीं परम्परा में थे। हिंदी के प्रमुख सूफी कवि मलिक मोहम्मद जायसी का संबंध इसी मेहदवी सम्प्रदाय से था और वे शेख बुरहान के शिष्य थे।

7.3 जायसी और सूफीमत

अभी तक आपने सूफी मत के विभिन्न सम्प्रदायों की जानकारी प्राप्त की। अब जायसी और सूफी मत के संबंधों के बारे में जान लेना आवश्यक है, क्योंकि जायसी और सूफीमत को समझे बिना उनकी कविता को समझना आसान नहीं है।

ऊपर कहा जा चुका है कि जायसी मेहदवी संप्रदाय के कवि थे और उनके गुरु शेख बुरहान थे। यही नहीं, जायसी का संबंध चिश्तिया संप्रदाय से भी जोड़ा गया है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल और परशुराम चतुर्वेदी ने जायसी को चिश्तिया सम्प्रदाय का माना है। प्रो0 रामपूजन तिवारी, डॉ0 रामखेलावन पांडेय आदि ने उन्हें मेहदवी संप्रदाय का बताया है। जायसी के अनेक विशेषज्ञों की धारणा इसी प्रकार की है और इसी आधार पर **पदमावत** की व्याख्या की जाती रही है। विद्वानों की इन धारणाओं का आधार भी है। जायसी ने स्वयं **पदमावत** के एक कड़वक में शेख बुरहान समेत अनेक गुरुओं की सूची दी है जिससे यह भ्रम होना स्वाभाविक है कि उनके अनेक गुरु थे जिनसे उन्होंने दीक्षा ली या जिनके संपर्क में वे आये।

सबसे पहले सर जार्ज ग्रियर्सन ने जायसी को मुस्लिम संन्यासी घोषित करते हुए उन्हे सूफीमत से जोड़ा। बाद में आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने ग्रियर्सन के विचारों को सही पाया और उसका समर्थन किया। हालांकि शुक्ल जी ने जायसी को सूफी कवि माना है, किन्तु उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि जायसी के काव्य में सूफी तत्व कम हैं, भारतीय अद्वैत दर्शन, वेदान्त एवं हठयोग के तत्व ही अधिक हैं। उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि जायसी सूफियों के अद्वैतवाद तक ही सीमित नहीं रहे हैं, वेदान्त के अद्वैतवाद तक भी पहुँचे हैं। इसी प्रकार प्रो0 परशुराम चतुर्वेदी, डॉ0 रामखेलावन पांडेय, प्रो0 रामपूजन तिवारी, डॉ. श्रीनिवास बत्रा और प्रो.हसन अस्करी ने भी जायसी को सूफी मत से जोड़ते हुए **पदमावत** की व्याख्या की है, हालाँकि उन्हें **पदमावत** में सूफी दर्शन के कम ही दर्शन हुए हैं।

इन विद्वानों के विचारों से सहमत होकर जायसी को सूफी कवि मान लेना पर्याप्त नहीं है। जायसी अगर हिन्दी के सूफी कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं और **पदमावत** सूफीमत को प्रतिपादित करने वाला श्रेष्ठ ग्रंथ है तो उसमें रूपक का भी सफल निर्वाह हुआ होगा। यह कैसे हो सकता है कि एक श्रेष्ठ सूफी कवि अपने काव्य में सूफीमत का ठीक से निर्वाह न कर सके। मगर हुआ ऐसा ही है। **पदमावत** के आधार पर जायसी को न तो सूफी कवि कहा जा सकता है और न ही **पदमावत** को सूफी प्रेमाख्यानक काव्य।

जायसी सूफी थे, सूफी कवि थे या सिर्फ कवि थे - इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। जायसी और **पदमावत** को समझने के लिए यह ज़रूरी है। जायसी को सूफी कवि मानने वाले विद्वानों के लिए पदमावत का एक कड़वक काफी रहा है। जायसी को सूफी कवि मानने की यह धारणा अब तक जारी है। जायसी केवल कवि थे और उनकी रचना **पदमावत** में सूफी दर्शन अनायास ही आ गये हैं, इस बात को बहुत कम आलोचक मानते हैं।

जायसी कवि थे। उनका किसी सूफी संप्रदाय से कोई संबंध था अथवा नहीं, नहीं कहा जा सकता, तथापि वे सूफीमत से भलीभाँति परिचित थे। प्रो0 विजयदेवनारायण साही के अनुसार, **''जायसी में अपने स्वाधीन चिंतन और प्रखर बौद्धिक चेतना के लक्षण मिलते हैं जो गद्दियों और सिलसिलों की मठी या सरकारी नीतियों से अलग हैं। इस अर्थ में जायसी यदि सूफी हैं तो कुजात सूफी हैं।''** वास्तव में जायसी के बारे में विजयदेवनारायण साही का यह कथन सही है। भारत में सूफी मत के उद्भव और विकास के युग में तो जायसी को सूफी नहीं माना गया, किंतु बाद में उनको लेकर तरह-तरह के विभ्रम खड़े किये गये और जायसी को सूफी सन्त और सूफी कवि मान लिया गया। जायसी को सूफी कवि प्रमाणित करने के लिए **पदमावत** के उन स्थलों को बार-बार दोहराया गया जिनमें सूफीमत की झलक मिलती है। आचार्य शुक्ल ने **पदमावत** के अन्त के जिस कड़वक **''तन चितउर मन राजा कीन्हा''** के आधार पर **पदमावत** में रूपकत्व के निर्वाह की कोशिश की, वह कड़वक ही प्रक्षिप्त है। डॉ0 माता प्रसाद गुप्त ने इसे प्रक्षिप्त सिद्ध करके जायसी और **पदमावत** के बारे में फैले बहुत सारे विभ्रमों को दूर कर दिया।

जायसी ने **पदमावत** के जिस कड़वक में गुरुओं की एक लंबी सूची दी है, उसके आधार पर भी उन्हें सूफीमत के किसी संप्रदाय से जोड़ना गलत है। प्रो0 विजयदेव नारायण साही ने ठीक ही लिखा है कि **''जायसी के पदमावत में न सिर्फ एक विशेष जीवन-दृष्टि है, बल्कि एक स्पष्ट सामाजिक सांस्कृतिक समन्वय भी है। गुरुओं की समूची सूची से इसका मिज़ाज बैठाना कठिन है।''**

जायसी के सूफी होने के प्रमाणस्वरूप **पदमावत** को एक और तरह से हथियार बनाया जाता है। वह हथियार यह है कि **पदमावत** मसनवी शैली में लिखा गया एक प्रेमाख्यानक काव्य है। मसनवी फारसी की एक शैली है और ज्यादातर सूफी प्रेमाख्यान इसी शैली में लिखे गये। यहाँ मसनवी और **पदमावत** के प्रेमाख्यान के बारे में बस इतना कहना पर्याप्त होगा कि शैली मात्र के अनुकरण से कोई रचना किसी सम्प्रदाय के मतों को प्रतिपादित नहीं करती और दूसरे **पदमावत** प्रेमकाव्य ही नहीं है। इसमें युद्ध का भी विशद वर्णन हुआ है।

इस तरह जायसी मननशील और मानवीय संवेदना के कवि थे। उन्हें जीवन का व्यापक अनुभव था। उनका यही अनुभव उनकी कृति **पदमावत** में दिखायी पड़ता है। जायसी ने कहीं भी इस महान काव्य ग्रंथ को सूफी काव्य मानने का आग्रह नहीं किया है, हालाँकि वे प्रेम पर विशेष जोर देते हैं। जायसी के लिए **पदमावत** एक प्रेम कथा है, बाकी कुछ नहीं। उनका आग्रह बस यही है -

और उन्होंने इस प्रेमकथा के लिखने का प्रयोजन भी बताया है -

औ मन जानि कबित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।

जायसी और उनके **पदमावत** की व्याख्या के लिए इन पंक्तियों को ध्यान में रखना जरूरी है; नहीं तो जायसी के साथ अन्याय की पूरी संभावना है।

जब किसी कवि को किसी खास संप्रदाय से जोड़ दिया जाता है और साहित्यिकों में एक भ्रमपूर्ण धारणा जड़ जमा लेती है तो उसे तोड़ना आसान नहीं होता है। इससे पहले आपने देखा कि जायसी एक कवि थे, किसी सूफी संप्रदाय से उनका संबंध नहीं था। यह अलग बात है कि **पदमावत** के कुछ थोड़े-से स्थल सूफी सिद्धान्तों के अनुकूल हैं अन्यथा समूचा **पदमावत** एक लौकिक प्रेमकाव्य है जिसमें प्रेम और युद्ध को समान महत्व दिया गया है। फिर भी सूफीमत में प्रेम के स्वरूप और प्रेम के बारे में जायसी की अवधारणा का विवेचन ज़रूरी है।

सूफी मत एक दर्शन है जिसमें प्रेम ही भक्ति का साधन है। यह प्रेम नितान्त लौकिक है, किन्तु सूफी इस सांसारिक प्रेम को इतना उदात्त और दिव्य बना देते हैं कि वह अलौकिक प्रेम में बदल जाता है। सूफीमत की शब्दावली में इसे इश्क मज़ाजी से इश्क हकीकी में रूपान्तरण कहा जाता है। ईश्वर के प्रेम में आकंठ डूबा और विरह में रत होकर सूफी संसार से अलग हो जाता है। प्रेम और "प्रेम पियाला" के लिए सूफी हमेशा लालायित रहते हैं। प्रेम के द्वारा ईश्वर या सत्य का आभास करके वे उन्माद की दशा में पहुँचते हैं और ईश्वर में एकाकार हो जाते हैं। इश्क हकीकी तक पहुँचने के लिए वे इश्क मजाजी का सहारा लेते हैं। वे स्वयं को जीवात्मा या आशिक मानते हैं और स्त्री या परमात्मा को माशूक। माशूक हमेशा सौंदर्यपुंज होता है जो खुदा के जमाल का सूचक है। ईश्वर को प्राप्त करने के लिए सूफी अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करते हुए अपने लक्ष्य की ओर बढ़ते जाते हैं। फारसी के सूफी कवियों में ही नहीं, बल्कि हिन्दी के सूफी कवियों में भी यह प्रवृत्ति समान रूप से दिखायी पड़ती है। मुल्ला दाउद, कुतुबन, मंझन और नूर मुहम्मद सभी ने अपने काव्यों में इसी पद्धति का अनुसरण किया है। इस तरह हिन्दी में दाम्पत्य प्रेम के माध्यम से ईश्वरीय प्रेम की एक नयी शैली विकसित हुई। भारतीय जीवन और दर्शन में इस तरह की प्रेमकथाएँ नहीं थीं।

सूफियों ने इस्लाम को सहज और सरल बनाने की कोशिश की। इसलिए उन्होंने ईश्वर भक्ति के लिए प्रेम को अर्थात् मधुरा भक्ति को चुना। उन्होंने योग और ज्ञान को नहीं, प्रेम और उससे उत्पन्न विरह को महत्व दिया। जायसी ने इसीलिए प्रेम (सांसारिक प्रेम) को ईश्वरीय प्रेम माना। प्रेम से स्व की भावना से मुक्ति मिल जाती है। प्रेम सौंदर्य से उत्पन्न होता है। अत: सूफियों ने ईश्वरीय सौंदर्य को अपने माशूक में ही देखा। यह सूफी दर्शन है। इसीलिए जायसी ने लिखा -

जब लगि विरह न होइ तन, हिये न उपजइ पेम।
तब लगि हाथ न आव तप, करम धरम सत नेम।।

हम चाहें तो इस दोहे को सूफीमत की प्रेमसंबंधी अवधारणा से जोड़ सकते हैं, किन्तु किसी एक दोहे या कुछ छंदों के आधार पर जायसी के प्रेम को सूफीमत के अनुकूल सिद्ध करना ठीक नहीं होगा। हालाँकि जायसी सृष्टि की रचना का उद्देश्य हज़रत मुहम्मद से प्रेम स्वीकारते हैं :

कीन्हेसि पुरुष एक निरमरा। नाउं मुहम्मद पूनिउं करा।
प्रथम जोति विधि तोहि केर साजी। ओ तेहि प्रीति सिष्टि उपराजी।

जायसी के व्यक्तित्व के दो रूप हैं। जन्म से मुस्लिम होने के कारण जायसी की इस्लाम और हज़रत मुहम्मद में आस्था स्वाभाविक है, लेकिन यह जरूरी नहीं कि तत्कालीन सूफी सम्प्रदायों से भी उनका संबंध रहा ही हो। इसके ठीक विपरीत जायसी का कवि व्यक्तित्व है जहाँ वे सिर्फ कवि हैं - प्रेम और विरह के कवि। यहाँ न तो वे मुसलमान हैं और न ही सूफी। वे प्रेम में आहत हैं, इसीलिए उनके बोल, उनकी अभिव्यक्ति में प्रेम और विरह की तीव्र वेदना है -

जेहि के बोल बिरह के छाया। कहु तेहि भूख कहाँ तेहि छाया।।

इसीलिए उन्होंने **पदमावत** का उपसंहार करते हुए यह स्वीकार किया है कि इस कथा (पद्मिनी की कथा) को मैंने जोड़कर सुनाया है यानी अपनी उर्वर कल्पना के द्वारा इसका निबंधन किया है। इसी कड़वक में उन्होंने "प्रेम की पीर, रकत की लेई" और नैनजल से भीगी गाढ़ी प्रीति की भी चर्चा की है। आगे उन्होंने लिखा है -

औ मन जानि कबित अस कीन्हा। मकु यह रहै जगत महँ चीन्हा।।

अर्थात् मैंने सोच-विचार कर, जो मुझे अच्छा लगा ऐसे काव्य की रचना की। ज़ाहिर है, जायसी किसी मत-मतान्तर के चक्कर में न पड़ कर स्वच्छन्द रूप से प्रेम को अपनी भाषा में व्याख्यायित करने की बात कह रहे हैं, यशप्राप्ति तो अगला उद्देश्य है ही।

पदमावत की संरचना को देखते हुए साही के शब्दों में यह कहना गलत न होगा कि "**पदमावत** में सूफी तत्व हैं, लेकिन वे कथा के प्रधान अंश नहीं हैं।" यदि **पदमावत** से उन गिने चुने अंशों को निकाल दिया जाय तो भी न तो **पदमावत** पर कोई फर्क पड़ेगा और न ही जायसी की प्रेम संबंधी दृष्टि पर। एक मानवीय संवेदना का स्वच्छन्द कवि जिस तरह नागमती के विरह वर्णन में रमता है उसी प्रकार तोते के उड़ जाने पर पदमावती के दुख में भी शरीक होता है। इस तरह प्रेम की पीर का यह कवि अपनी बौद्धिक सधनता और रागात्मक वृत्ति को इतिहास और लोककथा के समन्वय में लगा देता है। यहाँ न तो एकेश्वरवाद है और न ही अद्वैतवाद। यहाँ विशुद्ध प्रेम है और यह प्रेम परम्परा से जुड़ा हुआ है। जायसी से पहले भी प्रेम पर बहुत कुछ लिखा जा चुका था। जायसी उससे परिचित थे। इसीलिए जायसी बहुत ही नम्रता के साथ यह स्वीकार करते हैं कि मैं तो सभी कवियों के पीछे-पीछे चलने वाला हूँ - **हौं सब कबिनं केर पछिलगा।** श्रेष्ठ कवियों के पीछे चलने वाले इस कवि ने सब कुछ जाना-पहचाना है। उसे भारतीय और फारसी की काव्य-परंपराएँ और प्रेम के स्वरूप की जानकारी है। उसे इतिहास की भी जानकारी है और लोक की भी। इसीलिए वह सबका समन्वय करने में सफल रहा है। यदि उसके **पदमावत** में सूफी मत आ गया है तो यह आकस्मिक नहीं है, क्योंकि वह दौर ही अनेक मत-मतान्तरों और अध्यात्म दर्शन का था। इनके बीच से जायसी ने प्रेम के मानवीय स्वरूप को बचाये रखा, यह जायसी की सबसे बड़ी खूबी है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि जायसी किसी मत-मतान्तर के चक्कर में न पड़कर स्वच्छन्द रूप से प्रेम को नया स्वरूप दे रहे थे, इसलिए जायसी की कविता में व्यक्त प्रेम का स्वरूप सूफीमत के प्रचलित प्रेम से अलग है। यही कारण है कि उनका प्रेम मानवीय संवेदनाओं से भरा हुआ है। आचार्य रामचंद्र शुक्ल भी सूफीमत के आधार पर **पदमावत** की व्याख्या करते समय **पदमावत** के प्रेम और विरह-खासतौर से नागमती वियोग खंड - में काफी रम गये हैं। नागमती वियोग खंड में एक स्त्री की कोमल भावनाओं का मार्मिक चित्रण हुआ है, इसे शुक्ल जी ने भी माना है। इसलिए जायसी को सूफी कवि मानकर **पदमावत** में रतनसेन-पदमावती के लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम मान लेना ठीक नहीं है। क्योंकि इससे रूपक का निर्वाह नहीं हो पाता। **पदमावत** को जायसी ने इस दृष्टि से लिखा भी नहीं है। इसे केवल संयोग ही कहा जाएगा कि जायसी मुसलमान थे, लेकिन वे इस्लाम धर्म से ऊपर उठे हुए सार्वभौमिक प्रेम के कवि थे। जायसी शुद्ध रूप से प्रेम के कवि थे-इससे भी बढ़कर जायसी जनकवि थे जिन्होंने लोक प्रचलित रतनसेन-पदमावती की प्रेमकथा के लोकरूप को सुरक्षित रहने दिया है।

पदमावत एक लौकिक प्रेम काव्य है। कुछ संकेतों के आधार पर उसे सूफी काव्य मानना ठीक नहीं है। जैसे सूफीमत में ईश्वर के प्रति प्रेम जागृत होना, आशिक का ईश्वर के एकनिष्ठ प्रेम में विरही होकर उसी की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना और प्रेम की अनन्यता के कारण आशिक यानी जीव का और माशूक यानी ब्रह्म का एकलय हो जाना। यही वस्ल है, यही फना और बका है जहाँ से साधक फिर इस असार संसार की ओर रुख नहीं करता है। **पदमावत** को देखते हुए कुछ दूर तक ऐसा लगता है कि जायसी का उद्देश्य यही है अर्थात् वे रतनसेन-पदमावती के प्रेम और दोनों के मिलन से सूफी दर्शन का प्रतिपादन करना चाहते हैं, लेकिन जब वे इससे आगे बढ़ते हैं और कथा इतिहास और लोककथा के समन्वय से एक नया रूप ग्रहण करती है तब सूफीमत दूर-दूर तक नहीं दिखायी पड़ता। रतनसेन के पदमावती के साथ चित्तौड़ आने, पदमावती और नागमती से समान रूप से पत्नीत्व का व्यवहार करने, पदमावती और नागमती के सौतियाडाह, अलाउद्दीन और देवपाल द्वारा पदमावती को प्राप्त करने की कोशिशें और रतनसेन की मृत्यु के बाद पदमावती और नागमती द्वारा सती होने आदि में सूफीमत कहाँ है? अगर नागमती "दुनिया का धंधा" है और अलाउद्दीन माया है तो रतनसेन अपने अभीष्ट लक्ष्य की प्राप्ति के बाद पुनः उसी दुनिया धंधे और माया में क्यों फंसने के लिए वापस आता है? वैसे भी

अलाउद्दीन का माया रूपक ठीक नहीं है। माया अगर हो सकती है तो केवल नागमती जो रतनसेन के मार्ग में रुकावट डालने की कोशिश करती है। इसी सिलसिले में यह भी विचारणीय है कि अगर पदमावती ब्रह्म है तो वह जीव से वियुक्त होकर विलाप क्यों करती है? क्या ब्रह्म जीव से अलग होकर दुखी होता है? क्या ब्रह्म जीव की मृत्यु के बाद स्वयं मर जाता है? अगर नहीं तो पदमावती क्यों विरह में विलाप करती है और अंत में सती हो जाती है? वास्तव में जायसी का यह विचार था ही नहीं कि वे सशक्त कवि होकर अपनी रचना पर इतने सारे प्रश्न उठाने का मौका देते। सूफीमत के चौखटे में बंधकर प्रेमाख्यान लिखना उनका उद्देश्य होता तो वे रतनसेन-पदमावती की कथा को रतनसेन-पदमावती मिलन तक ही सीमित रखते, उसे आगे बढ़ाते ही नहीं। इस दृष्टि से उसका कोई औचित्य ही नहीं है। दरअसल जायसी का उद्देश्य तो कुछ और ही था। उन्हें प्रेम के मर्यादित और उदात्तरूप की अभिव्यक्ति करना था इसलिए उन्होंने कथा में इतने मोड़ दिये, प्रेम को प्रस्फुटित होने के इतने अवसर दिये। निस्संदेह जायसी इसमें सफल हुए हैं।

7.4 कवि जायसी और उनका पदमावत

जायसी सुरति- शंगार के कवि हैं, प्रेम-अनुराग के कवि हैं। **पदमावत** में उन्होंने ऐसी घटनाओं का विधान किया है जो लोकोत्तर हैं याअयथार्थपरक। लेकिन ये घटनाएँ अविश्वसनीय नहीं हैं। हीरामन का आदमियों की तरह बोलना, शिव-पार्वती द्वारा रतनसेन को सिद्धि गुटिका देना, समुद्र द्वारा रतनसेन को पाँच अमूल्य रत्न देना आदि अनेक घटनाएँ लोकोत्तर हैं जो केवल लोककथाओं में ही मिलती हैं। ऐसा प्रतीत होता है जैसे जायसी ने इस कथा को सीधे लोक से ग्रहण किया है और वे लोकप्रचलित कथा से इतने प्रभावित थे कि उन्होंने उसके बहुत सारे अंशों को संशोधित करना मुनासिब नहीं समझा।

जायसी प्रेम के कवि हैं। उनकी मुख्य चिन्ता है प्रेम के लौकिक रूप को व्यापक और कालातीत बनाना। साही जी ने ठीक ही लिखा है कि "जायसी का प्रस्थान बिन्दु न ईश्वर है न कोई नया नया अध्यात्म। उनकी चिन्ता का मुख्य ध्येय मनुष्य है।" इसीलिए जायसी ने अपनी कविता के केन्द्र में मनुष्य को रखा है, वह मनुष्य जो सुख में उल्लसित होता है और दुख में रोता है। वह सच भी बोलता है और झूठ भी। ईर्ष्या-द्वेष सभी मानवोचित भाव उसमें निहित हैं। प्रेम में वह सब कुछ भूल जाता है। जायसी ने इसी मनुष्य के प्रेम को महाकाव्यात्मक गरिमा प्रदान की। जायसी के उस प्रेम-काव्य में सिर्फ प्रेम नहीं, ट्रेजेडी भी है जिसको सुनकर हर आदमी तिलमिला जाता है-

मुहमद कवि जो प्रेम का, ना तन रकत न माँसु।
जेईं मुख देखा तेइँ हँसा, सुना ते आये आँसु॥

अर्थात् प्रेम के इस कवि के शरीर में न रक्त है, न माँस। वह वृद्ध हो चला है और उसका चेहरा सुरूप नहीं है। इस कवि को जो भी देखता है उसे हँसी आती है, लेकिन जब वह उसकी त्रासद प्रेमकथा को सुनता है तो रोये बिना नहीं रहता।

जायसी की इस उक्ति को ध्यान में रखते हुए यदि **पदमावत** को देखें तो साफ पता चलता है कि इस प्रेमाख्यान में एकनिष्ठ प्रेम तो है, किन्तु उसमें जायसी का ट्रेजिक विज़न भी है। **पदमावत** में रतनसेन और पदमावती का प्रेम सीधा-सपाट नहीं है। यह अनेक विघ्न-बाधाओं से गुज़रता हुआ चरम बिन्दु पर पहुँचता है। ध्यान रहे कि जायसी ने यह प्रेमाख्यान इतिहास और लोककथा को अपनी कल्पना से समन्वित करके लिखा है। इतिहास भी क्या, उसमें इतिहास के सिर्फ कुछ संकेत भर हैं, है यह भी जनश्रुति ही। उन्होंने इतिहास से सिर्फ रतनसेन को ले लिया और उसे लोककथात्मक रूप दे दिया। इसलिए अगर **पदमावत** को लोककथा का काव्यमयरूप कहा जाय तो गलत नहीं होगा। कथा की शुरुआत ही लोककथा के आधार पर हुई है। सिंघलदीप की राजकुमारी के योग्य कोई वर नहीं मिल रहा है। राजा गंधर्वसेन परेशान है। पदमावती का सर्वज्ञ सुअटा पदमावती के लिए वर ढूंढने की बात कहता है जिस पर गंधर्वसेन नाराज़ होकर सुअटे को मारने का हुक्म देता है। लेकिन उसे बचा लिया जाता है। आखिर सुअटा ही पदमावती के योग्य वर की तलाश करता है और रतनसेन के मन में पदमावती के प्रति चाह उत्पन्न करता है। यह ऐसी चाँह है जो रतनसेन को राजा से जोगी बना देती है। वह सत्ता छोड़ देता है और एक सामान्य आदमी बनकर पदमावती को प्राप्त करने की कोशिशें करता है। जायसी ने "शिव-पार्वती खंड" में रतनसेन के एकनिष्ठ प्रेम को उभारते हुए शिव से सिद्धि गुटिका प्रदान करायी है। तात्पर्य यह है कि **पदमावत** की पूरी रचना-प्रक्रिया लोकगीतों और निजंधरी कथाओं से भिन्न नहीं है।

पदमावत के दूसरे भाग में इस स्वरूप को बनाये रखने और प्रेम की महत्ता स्थापित करने के लिए जायसी ने ऐतिहासिक कथा को भी लोककथात्मक बना दिया है।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने यह स्वीकार करते हुए लिखा है कि ''प्रेम के स्वरूप का दिग्दर्शन जायसी ने स्थान-स्थान पर किया है। कहीं तो यह स्वरूप लौकिक ही दिखायी पड़ता है और कहीं लोकबंधन से परे। ..... पर जायसी की दृष्टि इस लौकिक प्रेम से आगे बढ़ी हुई है। वे प्रेम का वह विशुद्ध रूप दिखाना चाहते हैं जो भगवत्प्रेम में परिणत हो सके।'' लेकिन जायसी कृत **पदमावत** की ही निम्नलिखित चौपाइयों पर ध्यान दिया जाय तो यह साफ ज़ाहिर होता है कि रतनसेन सिर्फ पदमावती के अलावा कुछ नहीं चाहता। पदमावती एक तरफ और स्वर्ग-नरक सब एक तरफ -

ना हौं सरग क चाहौं राजू। ना मोहि नरक सेंति किछु काजू।।
चाहौं ओहिकर दरसन पावा। जेइ मोहि आनि प्रेम पथ लावा।।

इसीलिए रतनसेन पदमावती को प्राप्त करने के लिए, उसकी एक झलक पाने के लिए पर्वत तो क्या आकाश की ऊंचाइयाँ नापने के लिए तैयार है। जिस पर्वत पर उसकी प्रिया के दर्शन संभव हों, उस पर्वत पर वह पाँव तो क्या सिर से चढ़ने के लिए तैयार है। दरअसल जायसी कहना चाहते हैं कि **''पुरुषहि चाहिय ऊंच हियाऊ''**। अर्थात् प्रेम के लिए बहुत बड़े कलेजे की जरूरत पड़ती है। ऊंचे कार्य के लिए जान भी देना पड़े तो पीछे नहीं हटना चाहिए-

राजै कहा दरस जौ पावौं। परबत काह, गगन कहँ धावौं।
जेहि परबत पर दरसन लहना। सिर सौं चढ़ौं, पाँव का कहना।
पुरुषहि चाहिय ऊंच हियाऊ। .....
.....ऊंचे काज जीउ पुनि दीजै।

यही है जायसी के प्रेम का आदर्श-प्रेम के लिए सर्वस्व न्योछावर करना और उसे किसी भी कीमत पर प्राप्त करना। यहाँ न तो अन्योक्ति है, न रूपक। यह बस लौकिक प्रेम है।

रतनसेन का प्रेम तब तक एकतरफा है जब तक उसकी मुलाकात पदमावती से नहीं हो जाती। पदमावती से मिलन के पूर्व तक रतनसेन एक रसलोभी भौंरे की तरह है जो पदमावती के रूप-सौंदर्य को सुनकर राजपाट छोड़ देता है। रतनसेन के प्रति पदमावती के हृदय में उसी वक्त प्रेम का उदय होता है जब वह पहली बार रतनसेन को देखती है। पदमावती के दर्शनमात्र से रतनसेन बेहोश हो जाता है। पदमावती उसके हृदय पर यह लिखकर चली गयी कि ''जोगी, तूने भिक्षा प्राप्त करने योग्य योग नहीं सीखा। जब फलप्राप्ति का समय आया तब तू सो गया।'' लेकिन घर जाकर पदमावती रतनसेन के वियोग में विलाप करने लगी। वह भी प्रेममय हो गयी। वह सोचती है, मैं जानती थी कि यौवन रस-भोग के लिए ही है, लेकिन यौवन बहुत दुखदायी, संताप और वियोग का कारण है। यौवन का भार सह सकना मुश्किल है। यौवन तो घोड़े की तरह है। इसे अपने वश में रखना चाहिए और उसे स्वच्छन्दतापूर्वक हर कहीं नहीं जाने देना चाहिए। यौवन है, इसलिए विरह है, जैसे चंदन में आग। यौवन उगता हुआ चाँद है और विरह राहु। इसलिए जब तक प्रिय मिल नहीं जाता तब तक तो प्रेम की इस पीर को सहना ही पड़ेगा। इस संसार में जन्म पाना ही सब कुछ नहीं है, जन्म लेने के बाद प्रिय को पा लेना ही सब कुछ है -

तुम पुनि जाहु बसंत लेइ, पूजि मनावहु देव।
जीउ पाइ जग जनम है, पीउ पाइ कै सेव।।

तात्पर्य यह है कि रतनसेन और पदमावती एक-दूसरे के प्रेम और विरह में अलग-अलग जल रहे हैं। मैथिलीशरण गुप्त की उर्मिला भी तो यही कहती है -

दोनों ओर प्रेम पलता है
सखि, पतंग जलता है, दीपक भी जलता है।

रतनसेन-पदमावती के प्रथम मिलन में ही प्रेम प्रस्फुटित होता है और निरंतर विकसित होता हुआ उदात्त रूप ग्रहण कर लेता है। इसको हम ''लक्ष्मी-समुद्र खंड'' में भी देख सकते हैं और ''पदमावती-नागमती-सतीखंड'' में भी। और ऐसे ही प्रेम को लेकर जायसी ने एक श्रेष्ठ प्रेमकथा लिखी है। प्रेमकथा के लिए ऐसा ही प्रेम आदर्श हो सकता है। तभी तो विजयदेव नारायण साही ने लिखा है कि ''पदमावती जिन्दगी का दर्शन नहीं, जिन्दगी है। वह जायसी का तसव्वुफ नहीं, जायसी की कविता है।''

वास्तव में कविता में दर्शन हो सकता है, किंतु कविता दर्शन नहीं होती। जायसी ने ऐसी ही कविता रची है जिसमें दर्शन तो है किन्तु वह दर्शनमात्र नहीं है। अर्थात् **पदमावत** में किसी दार्शनिक आधार को नहीं ग्रहण किया गया है, जायसी ने ख़ुद अपना एक अलग दर्शन बनाया है - प्रेम का दर्शन। और यह दर्शन परंपरा से अलग नहीं है।

रतनसेन का ऐकान्तिक प्रेम जायसी का प्रियनहीं है। वे उसके प्रेम को विस्तार देना चाहते हैं। इसीलिए उन्होंने रतनसेन को नागमती की याद दिलाकर उसे पुन: चित्तौड़ की ओर उन्मुख किया है। यदि जायसी का उद्देश्य **पदमावत** को सूफ़ी ग्रंथ बनाना होता तो वे ऐसा हरगिज़ नहीं करते। जायसी उस दाम्पत्य प्रेम में ही प्रेम की पूर्णता देखते हैं जो नागमती में ही संभव है। इसीलिए जायसी ने पदमावती को पूरी कथा में प्रेमिका ही बने रहने देना उपयुक्त समझा है। कविता के लिए प्रेम चाहिए जो पदमावती में है और प्रेम की पूर्णता दाम्पत्य में होती है, जो नागमती में है। रतनसेन पदमावती के साथ चित्तौड़ वापस आता है।

चित्तौड़ से सिंघलदीप की यात्रा पदमावती को प्राप्त करने के सारे उपक्रमों के बीच एक लम्बा समय बीत जाता है। नागमती को अपने पति की याद आती रहती है। वह उसके विरह में तड़पती रहती है। जायसी नागमती को नहीं भूलते। वे नागमती की विरहावस्था को स्वतंत्र रूप से प्रस्तुत करते हैं। नागमती वियोग वर्णन खंड मे नागमती की कारुणिक दशा का चित्रण करते हुए जायसी ने एक स्त्री की जो छवि प्रस्तुत की है वह एक भारतीय स्त्री की छवि है। वह ''घरनारी'' है। और यह घरनारी मतिहीन है -

तुम्ह तिरिआ मतिहीन तुम्हारी। मूरुख सो जो मतै घरनारी।

स्त्री के प्रति पुरुष की यह मानसिकता पुरानी है। यह विशुद्ध भारतीय धारणा है। जायसी ने भारतीय पुरुष की इसी मानसिकता को उजागर किया है। रतनसेन नागमती को डाँट देता है। वह सोचता है कि वह पुरुष मूर्ख है जो घरनारी की राय से चलता है।

पदमावत के उपसंहार में, जिसे अनेक विद्वानों ने प्रक्षिप्त प्रमाणित कर दिया है, नागमती के प्रति यह कथन कि ''नागमती दुनिया का धंधा'' यानी माया है, ठीक नहीं है। नागमती एक सम्पूर्ण स्त्री है जिसमें सभी मानवीय गुण हैं। वह अपने पति से डूबकर प्यार करती है, उसके विछोह में तड़पती है, पति को उससे दूर करने वाले सुआ को कोसती है, क्योंकि वह उसके पति को ही नहीं ले गया, बल्कि उसकी जान लेकर चला गया -

सुआ काल होइ लेइगा पीऊ। पिउ नहिं जात जात बर जीऊ।।

नागमती आशा और निराशा में डूबती-उतराती रहती है। वह अपने पति के दो मीठे बोल सुनने के लिए बेचैन है। असीम दुख में भी वह अपने को समझाती है कि यह विरह क्षणिक है। रसलोभी भौंरा अगर कमल के फूल के पास चला गया है तो क्या हुआ। उसे जब मालती पुष्प की याद आयेगी तो वह वापस लौट आएगा। जैसे कुछ दिनों तक सूखा रहने के बाद सरोवर पुन: जल से भर जाते हैं वैसे ही उसके विरही जीवन में सुख का संचार होगा लेकिन नागमती का दुख कम नहीं होता, दिन-दिन बढ़ता ही जाता है। वह हारकर भौंरे और कौवे से संदेश भेजती है कि जाकर मेरे पिउ से कह दो कि वह नागमती तुम्हारे वियोग की आग में जलकर मर गयी है। उसी के धुएँ से हमारा रंग काला हो गया है। शरीर में एक बूँद भी ख़ून नहीं बचा है। रत्ती-रत्ती रिसकर वह आँखों से बह गया है। वह ख़ून के आँसू रोती है। उसके आँसू जमीन पर गिरते हैं और धारा बनकर बहने लगते हैं मानो बीरबहूटियाँ रेंग रही हों।

रतनसेन को नहीं आना था, नहीं आया। नागमती उस विरह की आग को सहती रही जिसे गिरि, समुद्र, शशि, रवि और मेघ तक नहीं सह पाते। नागमती सती है - पतिव्रता है - रतनसेन की ब्याहता है। आखिर वह हारकर मान लेती है कि उसका पिउ नहीं आएगा, क्योंकि वह जिस देश में गया है वहाँ पावस, हेमंत, वसंत और कोकिल, पपीहा कुछ भी नहीं हैं जिनको यादकर वह वापस आये।

नागमती वियोग वर्णन में जायसी के कवि हृदय की सारी तरलता, करुणा और संवेदना मोम की तरह पिघल गयी है। जायसी ने जिस तन्मयता के साथ नागमती के वियोग का चित्रण किया है उतनी तन्मयता से पदमावती का नहीं। इसीलिए सम्पूर्ण **पदमावत** में नागमती वियोग खंड कवित्व की दृष्टि से

सर्वाधिक सशक्त और मार्मिक हैं। सीता के वियोग वर्णन में तुलसीदास को भी इतनी सफलता नहीं मिली है जितनी जायसी को नागमती के वियोग वर्णन में।

नागमती वियोग वर्णन में जायसी ने बारहमासा का प्रयोग किया है। यह बिल्कुल लोकगीतों की तर्ज पर है। भारतीय लोकगीतों में बारहमासा की परम्परा बहुत पुरानी है। लोकगीतों में बारहमासे की शुरुआत प्राय: आषाढ़ से की जाती हैं। जायसी ने भी उसी परंपरा का अनुसरण किया है।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि **नागमती का विरह वर्णन हिन्दी साहित्य में एक अद्वितीय वस्तु है। नागमती उपवनों के पेड़ों के नीचे रात भर रोती फिरती है। इस दशा में पशु, पक्षी, पेड़, पल्लव जो कुछ सामने आता है उसे वह अपना दुखड़ा सुनाती है। वह पुण्य दशा धन्य है जिसमें ये सब अपने सगे लगते हैं और यह जान पड़ने लगता है कि इन्हें दुख सुनाने से जी हल्का होगा। .... जायसी ने जिस प्रकार मनुष्य के हृदय में पशु-पक्षियों से सहानुभूति प्राप्त करने की संभावना भी है उसी प्रकार पक्षियों के हृदय में सहानुभूति के संचार की भी।**

वास्तव में शुक्ल जी ने जिस सहृदयता से **पदमावत** के इस खंड की व्याख्या की है, वह अद्वितीय है। शुक्ल जी की रसग्राही दृष्टि ने नागमती के विरह की व्याख्या करते हुए जायसी के कवित्व को ही सराहा है।

जायसी ने प्रेम को मनुष्यों तक ही सीमित नहीं रखा है। वे प्रेम का विस्तार करते हैं। उनकी नज़र में सारा अग-जग प्रेममय है। पदमावती यदि सुए के उड़ जाने पर दुखी होती है तो दुख के क्षणों में नागमती अपनी व्यथा कम करने के लिए पशु-पक्षियों से बातें करती है। प्रेम को व्यापकता प्रदान करने के लिए जायसी ने रतनसेन को राजा से जोगी बना दिया है और पटरानी नागमती को सामान्य स्त्री के रूप में चित्रित किया है जो इस चिन्ता में डूबी हुई है कि -

पुष्प नखत सिर ऊपर आवा। हौं बिनु नाह मंदिर को छावा।।

कबीर स्व-भाव के विलोप को ही प्रेम मानते हैं, जायसी की भी यही मान्यता है-

करब पिरीत कठिन है राजा

वे एक कदम और आगे बढ़कर कहते हैं-

जेहि तन प्रेम कहाँ तेहि माँसू। कया न रकत नैन नहिं आँसू।।

इसीलिए जायसी की नज़र में सभी लोग इस प्रेम पंथ पर चलने योग्य नहीं है। प्रेमपंथ अत्यंत विकट है, जहाँ दुख ही दुख है -

एहि रे पंथ सो पहुँचे, सहै जो दुख वियोग।

दरअसल जायसी का यही "पंथ" है, महदवी या चिश्तिया नहीं जिसको लेकर जायसी को तसव्वुफ के चौखटे में फिट करने की कोशिशें की जाती रही हैं और **पदमावत** को रूपक, अन्योक्ति और समासोक्ति कह कर उसके कद को छोटा करने की कोशिश की गयी है। जायसी की पदमावती में ईश्वरीय सत्ता का दर्शन करने वाले डॉ0 श्याममनोहर पांडेय ने रतनसेन के वियोग को ब्रह्म के लिए तड़पते हुए जीवात्मा के वियोग में तब्दील कर दिया है-

रकत के बूँद कया जत अहहीं। पदमावति पदुमावति कहहीं।।

डॉ. पांडेय ही नहीं, **पदमावत** की सूफीमत के आधार पर व्याख्या करने वाले सभी विद्वानों ने इस या इस जैसी पंक्तियों की व्याख्या की है। इस पंक्ति के सामान्य अर्थ को पता नहीं क्यों उन्होंने इतना कठिन बना दिया है। जायसी साफ-साफ कहना चाहते हैं कि शरीर में जितनी भी खून की बूँदे हैं सब एक स्वर से पदमावती -पदमावती कह रही हैं, कुछ उसी तरह जैसे कोई किसी को रोम से रोम चाहता है या रोम रोम से खुशी फूटती है।

7.5 सारांश

इस इकाई में आपने सूफ़ी मत, जायसी और उनके **पदमावत** का अध्ययन किया।

सूफ़ी मत एक दार्शनिक अवधारणा है, जो फ़ारसी काव्य से होती हुई हिन्दी काव्य तक आयी है। मलिक मुहम्मद जायसी की चर्चा सूफ़ी दर्शन की इसी प्रचलित धारणा के आधार पर की जाती है और उन्हें हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ सूफ़ी कवि कहा जाता है। सूफ़ी मत का आधार इश्क़ अर्थात् प्रेम है।

सूफ़ी शब्द की व्युत्पत्ति और भारत के सूफ़ी संप्रदायों के संदर्भ में आपने देखा कि जायसी का संबध मेहदवी संप्रदाय से जोड़ा जाता है और उनका गुरू शेख बुरहान को बताया जाता है। जायसी ने अनेक गुरूओं से दीक्षा ली थी। आपने सूफ़ी मत पर अनेक दर्शनों के प्रभाव का भी अध्ययन किया है। लेकिन जायसी के **"पदमावत"** में कुछ थोड़े से स्थल हैं, जो सूफ़ी सिद्धान्तों के अनुकूल हैं, बाकी सम्पूर्ण **पदमावत** लौकिक प्रेम काव्य है जिसमें प्रेम और युद्ध को समान महत्व दिया गया है। दरअसल जायसी के दो व्यक्तित्व हैं - एक, कुरान और हज़रत मोहम्मद में पूरी आस्था रखने वाला और दूसरा, कवि - प्रेम और विरह का कवि। यह व्यक्तित्व न मुसलमान है और न ही सूफ़ी। जायसी ने किसी मत-मतान्तर में पड़े बग़ैर प्रेमकथा लिखी है जिसका उद्देश्य है यश - प्राप्ति। इसीलिए उन्होंने अपनी कथा को प्रेमकथा कहा है।

पदमावत के विवेचन के क्रम में आपने देखा कि यह एक लौकिक प्रेमकाव्य है। उसमें सूफ़ी तत्व हैं, किन्तु वे कथा के प्रधान अंग नहीं हैं। जायसी ने इतिहास और लोककथा का अद्भुत समन्वय किया है। उसमें न तो एकेश्वरवाद है और न ही अद्वैतवाद। अतः उसमें रूपकत्व की तलाश अनुचित है। जायसी की मुख्य चिंता है प्रेम के लौकिक रूप को व्यापक और कालातीत बनाना। वे प्रेम का विस्तार करते हैं। उनकी नज़र में सारा अग-जग प्रेममय है।

पदमावत में सूफ़ी मत के अलावा भारतीय वेदान्त और हठयोग आदि अनायास ही आ गये हैं। जायसी का उद्देश्य किसी दर्शन या सिद्धान्त का प्रतिपादन करना नहीं था।

सारांश यह है कि जायसी प्रेमपंथ के अनुयायी हैं। तुलसी को अगर सारा संसार सीयराममय प्रतीत होता है तो जायसी को प्रेममय। इसीलिए उन्होंने प्रेम को इतनी व्यापकता और सामाजिकता प्रदान की है। जायसी के प्रेम की सामाजिकता को पदमावती के शिवमंदिर गमन के प्रसंग मे देखा जा सकता है जहाँ हर वर्ण और जाति की स्त्रियाँ मौजूद हैं। मनुष्य ही नहीं, जायसी ने मनुष्य के सुख-दुख मे पेड़-पौधों और पशु-पक्षियों तक को सहभागी बना लिया है। जायसी ने प्रेम की तीव्रता सिर्फ स्त्रियों में ही नहीं दिखलाई है। नागमती और पदमावती में प्रेम की तीव्रता है तो रतनसेन में भी यह कम नहीं है। जायसी ने **पदमावत** में दोहरे प्रेम को बहुत अच्छी तरह निबाहा है।

जायसी के लिए प्रेम की पूर्णता दुख और वियोग है अर्थात् दुख में भी सुख निहित है। प्रेम के मार्ग में दुख में सुख का दर्शन जायसी का मौलिक दर्शन नहीं है, फिर भी, जायसी ने उसे जीवन्तता प्रदान की है। प्रेम में निराशा को वे फिजूल मानते हैं। सच्चा प्रेम है तो मिलन होगा ही चाहे मृत्यु के बाद ही क्यों न हो। जैसे आम और मछली

बसै मीन जल धरती, अम्बा बसै अकास।
जौं पिरीत पै दुवौ मँह, अंत होहि एक पास।।

वस्तुतः **पदमावत** लौकिक प्रेम काव्य है जिसमें सूफ़ीमत, भारतीय वेदान्त और अद्वैत दर्शन, हठयोग आदि अनायास ही आ गये हैं। जायसी का यह उद्देश्य नहीं प्रतीत होता। वे प्रेमपंथ के सच्चे बटोही हैं। इसीलिए **पदमावत** को उन्होंने उसी तरह समझने का आग्रह किया है जिस रूप में वह लोक में प्रचलित है -

प्रेमकथा यहि भाँति बिचारहु। बूझि लेहु जौ बूझेहु पारेहु।।

7.6 शब्दावली

अनलहक - "मैं परम सत्य हूँ" (महान सूफ़ी साधक मंसूर हल्लाज ने अनलहक अर्थात् "मैं ही (दिव्य) सत्य हूँ" का उद्घोष किया था)

आशिक - सूफ़ी साधक स्वयं को प्रेमी (आशिक) मानता है, परमात्मा का।

इश्क मजाजी - लौकिक प्रेम

इश्क हक़ीकी - आध्यात्मिक प्रेम

जबरूत - साधना की तीसरी मंजिल की अवस्था है। अर्थात् ज्ञानं-प्राप्ति की अवस्था।

तरीक़त - साधना-मार्ग की दूसरी मंजिल है। इसमें साधक पवित्रता का सहारा लेता है। सांसारिक ऊँच-नीच से ऊपर उठ जाता है और उसमें देवदूतों के गुण आ जाते हैं।

तसव्वुफ - सूफ़ी मत, इस्लामी रहस्यवाद

नासूत - सूफ़ी साधना मार्ग की पहली मंजिल की प्रथम अवस्था है।

मलकूत - तरीक़त की मंजिल में साधक की जो अवस्था होती है, उसे सूफी "मलकूत" कहते हैं।

मसनवी - फारसी का एक छंद है। इसका उपयोग प्रायः वर्णनात्मक काव्यों के लिए किया जाता था।

मारिफ़त - सूफी साधना-मार्ग की यह तीसरी मंजिल है। इस मंजिल में (ईश्वरीय ज्ञान) साधक (जीवात्मा) के परमात्मा से मिलन के रास्ते की सारी रूकावटें दूर हो जाती हैं। वह राग-विराग से मुक्त हो जाता है और उसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

माशूक - सूफ़ी परमसत्ता को प्रायः प्रियतमा (माशूक) के रूप में याद करते हैं।

लाहूत - अंतिम या चौथी मंजिल में साधक की जो अवस्था होती है, उसे "लाहूत" की अवस्था कहा गया है।

शरीय़त - सूफ़ी मार्ग की चार मंजिलों में पहली मंजिल है। भारतीय सूफ़ी, सूफ़ी - मार्ग की चार मंजिलें मानते हैं और उन मंजिलों की चार अवस्थाएँ स्वीकार करते हैं। "शरीयत" में साधक धर्मग्रंथ में बताए नियमों और निषेधों को मानता है। इस मंजिल में साधक प्रकृत अवस्था में होता है।

हक़ीक़त - चौथी या अंतिम मंजिल है। हक़ीक का अर्थ परम सत्य है।

7.7 अभ्यास/प्रश्न

1. सूफ़ी मत क्या है ? यह इस्लाम से किस तरह भिन्न है?
2. सूफ़ी मत के कितने संप्रदाय हैं? जायसी का संबंध किस संप्रदाय से है? क्या पदमावत सूफ़ीमत को प्रतिपादित करने वाला काव्य ग्रंथ है?
3. सूफ़ी साधना का मूल आधार क्या है? इश्क मजाजी और इश्क हक़ीक़ी से आप क्या समझते हैं?
4. कवि के रूप में जायसी का मूल्यांकन कीजिए।